तुम नहीं समझ सकते

जिंदर

तुम नहीं समझ सकते

https://www.hindiadda.com/tum-nahin-samajh-sakate/

"तौबा! इतनी गरमी!" बस से उतरते ही साथ वाली सवारी ने कहा है। मैं चारों तरफ दृष्टि घुमाता हूँ। सड़क सुनसान लगती है। मैं शेड के नीचे आ खड़ा होता हूँ। कुछ लोग बस की प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक तरफ पैरों के बल बैठा बुज़ुर्ग अपने साथी से कह रहा है, "इस बार तो बारिश में बहुत देर हो गई। सारा सावन निकल चला। बारिश की एक बूँद नहीं पड़ी। पहले कभी ऐसा नहीं हुआ। अगर और दो हफ़्तों में पानी न बरसा तो बोरों में बचा खुचा पानी भी खत्म हो जाएगा। ऊपर से बिजली की कट चल रही है। तेल की दो केनियों के लिए आधा-आधा दिन पेट्रोल पंप पर खड़ा होना पड़ता है। रब भी हमारा सब्र का इम्तहान लेता है। बूढ़ियों ने, बच्चियों ने सौ सौ उपाय किए पर आसमान में रत्ती भर भी काले बादल नहीं छाए...।"

नलके पर से पानी पीते हुए एक विचार मन में आता है कि रिक्शा कर लूँ। एक हाथ में रोटी वाला डिब्बा है, दूसरे हाथ में सामान से मुँह तक भरा हुआ थैला। भार अधिक है। डेरा काफ़ी दूर पड़ता है। अड्डे से दो मील तो अवश्य होगा। वापसी पर तो निभ जाता है। कभी जोगिंदर ट्रैक्टर पर छोड़ जाता है, कभी गोरखा साइकिल पर। मोड़ मुड़ते हुए, मैं फिर रुक जाता हूँ। आगे निवाण (नीची ज़मीन) शुरू होकर धूल भरा कच्चा राह है। असमंजस में फँस जाता हूँ कि रिक्शा लूँ या नहीं। रिक्शावाला पाँच-सात से कम में नहीं मानेगा। पहले भी तो मैं पैदल चल कर जाता रहा हूँ। आज गरमी कुछ ज्यादा ही लग रही है। चित्त घबरा रहा है। फिर मन बदल जाता है, यह सोचकर कि बाबू कहेंगे, "तुझे हम बेटों की तरह समझते हैं। तू भी बेटों की तरह रहा कर। बता, कभी तेरे साथ फ़र्क़ किया।" मुझे बाबुओं का कहा हमेशा ही सच लगा है। वह मेरी लिखी डे-बुक चैक नहीं करते। न ही किसी किस्म की कोई निशानी लगाते हैं। मैं जितना चाहे खर्चा डाल दूँ, उन्होंने कभी चूँ नहीं की। मैंने दो-तीन बार कहा था तो बड़े बाबू का जवाब था, "बता, तू कोई ग़ैर आदमी है। मुझे तेरे पर एतबार है। मैं जानता हूँ, तू जगीर राम का लड़का है। मैं कभी अपने नौकर को नौकर नहीं समझता। न ही चाहता हूँ कि वो भी अपने आप को नौकर समझे। फिर तू तो मेरे बेटों जैसा है।"

सड़क पार करते हुए याद आता है। कल शाम वापसी पर जोगिंदर ने कहा था, "गोरखे को दूध और बीड़ी के दो बंडल दे देना।"

मैंने उसकी बात अनसुनी कर दी थी। प्रत्युत्तर में कोई हुंकारा नहीं भरा था। सामान्य से कुछ ऊँची आवाज़ में उसने फिर कहा था, "याद है न? भूल न जाना। कल वाली बात न हो। उजाड़ में बीड़ियों से वक्त अच्छा गुजर जाता है। तुम भी एक रात यहाँ बिताकर देखो। पता चल जाएगा, किस भाव बिकती है। यह बेई (नदी) की तरफ से अजीब-अजीब सी आवाज़ें आती हैं।" दूध के दो पैकेट मैंने ले दिए थे पर बीड़ी के बंडल

नहीं भेजे थे। यह जानते हुए भी कि वह सारी रात मुझे गालियाँ बकेगा। मालिकों की धी-बहन एक करेगा। अक्सर वह कुछ न कुछ माँगता ही रहता है। उसकी कौन-कौन सी ज़रूरत पूरी करूँ? एक पूरी होती है तो झट दूसरी की फ़रमाइश कर देता है। अब यह उसकी आदत बन गई है। अभाव मन में बेसब्रापन ही पैदा करते हैं।

वापस लौटकर मैं बीड़ी के दो बंडल लेता हूँ। शीशम की छाँव तले खड़े होकर डेरे की तरफ जाती राह की ओर देखता हूँ। देखता नहीं, घूरता हूँ। शायद कोई ट्रैक्टर ही मिल जाए या साइकिल, गड्डा या कुछ और ही जाने वाला साधन। कभी कभी बच्चों की टोली मिल जाती है। इनमें से कुछ नीचे पड़ने वाली कालोनी में से होते हैं। कुछ आगे पड़ने वाले डेरों में से। कच्चा राह आगे पड़ने वाले डेरों तक जाता है। कालोनी के पास से होता हुआ यह राह आबे की चढ़ाई चढ़कर तीन हिस्सों में बँट जाता है। इससे आगे टीले शुरू हो जाते हैं।

पूरब की तेज़ बहती हवा ने शरीर को झुलसा कर रख दिया है। बंदा तो क्या कोई परिंदा भी नहीं दिखाई देता। मेरे सामने चक्रवातों में रेत उड़ रही है। छोटे बाबू आकाशदीप की नसीहतें और हिदायतें याद आती हैं, "भाजी, ध्यान से देखना कितनी जगह समतल हुई। दूसरी तरफ के टीले को अभी हाथ लगाया कि नहीं। गोरखे को समझाओ कि मेड़ें पक्की मिट्टी की बनाए। एक दिन ट्राली पर पक्की मिट्टी ढो लें। जोगिंदर से कहना, जल्दी-जल्दी काम निबटाए। मोटरें तो लग गईं पर अभी तक कुओं पर टीप नहीं हुई। लौटते वक़्त सारे सामान पर नज़र ज़रूर मार आया करो।... समझ लो, हम नहीं गए, बस हमारे परिवार का कोई सदस्य गया। बड़े बाबू जी तो तुम्हें अपना चौथा बेटा मानते हैं।"

"बाबू जी, ठंडा पानी पिलाऊँ?" गोरखा पूछता है। मैं आड़ू के वृक्षों के नीचे बिछी चारपाई पर सिरहाने की तरफ बैठ जाता हूँ। पैताने की ओर जोगिंदर मुँह फुलाए पड़ा है। वह काफ़ी गुस्से में लगता है। मैं डर जाता हूँ कि पता नहीं वह क्या कह देगा। अधिक देर वह किसी बात को हज़म नहीं कर सकता। वह मेरी तरफ देखता है। उठकर बैठ जाता है। गर्दन झुकाकर पूछता है, "बाबू जी, कितने बज गए?"

"ढाई बज गए हैं।" घड़ी देखकर बताता हूँ। पानी पीने से कुछ राहत मिली है। आँखों पर पानी के छींटे मारते ही आँखों में उभरी चिपचिपाहट कुछ कम हुई है।

दाढ़ी में उँगलियों से खाज करता हुआ वह शुरू हो जाता है, "मुझे बताओ, यह वक्त रोटी का होता है? चाय से कहीं पेट भरता है? सूखी चाय। ना यहाँ कुछ खाने को मिलता है, ना पीने को। रेता फाँकने से तो रहे। भूखे पेट काम होता है?" फिर पेट पर से कमीज़

उठाता है, "देखो, पेट तो सिकुड़ गया इनका काम सँवारते-सँवारते। ना कोई काम का वक्त, ना खाने का। ना पीने का, ना...। इस वक्त रोटी खाकर बंदा बीमार न होगा तो और क्या होगा।"

चुप रहता हूँ। जानता हूँ। अब शुरू हो गया है तो बोलता ही जाएगा।

"लाला लोग... आदमी को आदमी समझते ही नहीं। हम तो मशीन से भी गए गुजरे हैं। इन्हें तो काम प्यारा है। सिर्फ़ काम। आदमी चाहे मर जाए, इनका काम होना चाहिए। वह भी समय से। स्कीमें तो ये अमरीका की तरह बनाए जाएँगे, पर तनख्वाह देते समय मिरासियों की तरह गुत्थली और ज्यादा कस लेते हैं। पिछली बार जब दिल्ली गया था तो खुद कोठी में एक बार घुसे तो फिर सवेर को मत्थे लगे। मुझे घुसा दिया ढारे-से में। न खाट, न बिस्तरा। ऐसी ठंड लगी कि देह दुबारा ठीक नहीं हुई। जब टाइम से दवाई नहीं मिलेगी, शरीर भी क्या करेगा। खुद को तो जुकाम भी होने वाला हो तो झट डॉक्टर को फोन करते थे। पिछले दिनों आकाशदीप की लड़की को चींटी काट गई थी। एक छोटा-सा धप्पड़ पड़ गया था। सारे टब्बर में हायतौबा मच गई थी। टायर बदलते वक्त मेरे हाथ में कितना बड़ा चीरा आ गया था। बड़े बाबू ने इतना कहकर बात खत्म कर दी, "ले, यह भी कोई बात है। डरैवरों को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा करता। लीर से कसकर बाँध ले। ऊपर ब्रेक आयल की दो बूँदें डाल ले...।"

थैले में से बीड़ी के बंडल निकाल कर मैं उसके आगे रख देता हूँ।

वह बंडलों को झपट्टा मारकर उठाता है। एक बंडल को जेब में डालने की करता है। दूसरा खोलकर साफे के छोर से माचिस की डिब्बी निकालता है। जल्दी जल्दी कश खींचता है मानो उसके अंदर कोई आग सुलग रही हो और बीड़ी के धुएँ से इस आग को लपटों का रूप देना चाहता हो।

मैं पूछता हूँ, "रात को बेलों को पानी लग गया था कि नहीं?"

आगे जाकर देखने की हिम्मत नहीं हो रही है। मोटर से चारेक खेत हटकर नीचे जोते हुए खेत में हलवों की बेलें बो रखी थीं। मैं कपड़े उतारकर चारपाई के सिरहाने की ओर टाँग देता हूँ। पसीने से भीगी हुई बनियान पानी में से निकालता हूँ। उफ्फ गरमी! लगता था, मानो शरीर में बचे हुए पानी को जल्दी ही चूस लेगी।

माथे पर त्यौरियों का जाला सघन करता हुआ वह बताता है, "अगर उन्हें एतबार नहीं आता तो आप आकर देख लिया करें। बातें करनी आसान होती हैं। काम करना कठिन।

उसने कोई पूछने वाला हो कि रेतीली ज़मीन को पानी लगाना कितना आसान होता है? वह भी पहली बार। पानी लगाते हैं तो कहीं से आड़ टूट जाती है, कहीं से रोक। एक बार टूट जाए तो दौड़कर मोटर बंद करो। तब तक पानी दूर तक फैला होता है। निकास मर जाता है। फिर चलाओ। ज्यादा रंडी रोना तो यही रहता है। उन्हें बताना, अभी पहला साल है। ज़मीन भी समतल होते होते होगी और पानी भी लगते-लगते लगेगा। ऊपर से अँधेरी रातें। कितनी बार दुहाई दे चुका हूँ कि बैटरी में सैल ही डलवा दो। थोड़ा सा आसरा हो जाएगा। पर उन्हें क्या? यह तो मैं जानता हूँ या गोरखा। दो बार साँप के काटने से कुदरती बचा हूँ। फनीअर साँप। किस्मत अच्छी थी मेरी और मेरे बच्चों की। शायद पिछले करमों का कोई लेन-देन काम आया था। नहीं तो अब तक हम तो चले थे। एक तो आज मारा है। बड़ी लाठी जितना। ससुरा ट्रैक्टर के टायरों पर चढ़ने को फिरता था। दस मिनट अगले टायर के नीचे दिए रखा। मुश्किल से मारा। कहो तो दिखाऊँ। अभी भी झाड़ी के पास पड़ा होगा।"

"नहीं।"

"अपने बाबुओं के लिए ले जाओ। उन्हें पता चलेगा कि यहाँ कैसे रहा जाता है।"

"छोड़ इन बातों को। तू यह बता भई कि कितने क्यारे भरे। मोटर...।"

"कौन कंजर कहता है मोटर नहीं चलाई। दस बजे जाकर बिजली आई। बीच में दो बार चली गई। गोरखा तो हिम्मत छोड़ बैठा था। झूठ है तो पूछ लो वो सामने बैठा है। कहता था - हम तो दिन में काम कर सकता है। मैं ही रह गया इनकी बेगारी करने को। हम खाली तो नहीं बैठे रहते। तुम भी मेरे पर शक करते रहते हो। करे जाओ। अपने घर में बैठा हर कोई शेर होता है। मैं पराये इलाके में से आया हूँ। न कोई जानता है, न पहचानता है। न आसपास कोई रिश्तेदार। मेरी कौन सुनने वाला?" प्रायः उसके पास अंतिम हथियार यही होता है।

"भाऊ, यह बात तो नहीं।"

मैं उसका नाम नहीं लेता। वह मेरे से उम्र में काफ़ी बड़ा है।

"और क्या बात है?"

"बता, मैंने कभी तेरे साथ फ़र्क़ किया?"

इतनी सी बात से वह कुछ ठंडा पड़ जाता है। उसका पारा ठीक जगह पर आ टिकता है। वह कहता है, "मैंने भी तुम्हें कभी बाबूजी के बग़ैर नहीं बुलाया।"

मैं जानता हूँ कि वह मज़बूर है। जब बोलता है तो आपे से बाहर हो जाता है। मेरे आगे भी। बाबुओं के आगे भी। गोरखे के साथ तो बिना गाली के बात नहीं करता। जैसे सारा नज़ला गोरखे पर झाड़ना हो। बाकी लोगों के आगे तो उसे झुकना पड़ता है। गोरखे को हाँक मारता है, "अपनी माँ के खसम, कहाँ मर गया। तुझे कभी अक्ल नहीं आएगी। साले मेरे, बच्चे पैदा करने की करते हैं। फिर चल मेरे भाई पंजाब को। इनके लिए तो यही दुबई, विलैत...।"

"बाबू जी, मेरी दवाई।" उसे एकदम याद आता है। खाँसते-खाँसते उसका सिर घुटनों से लग जाता है। उसका ऊपर का साँस ऊपर और नीचे का नीचे रह जाता है। मैं गोरखे को पानी का गिलास लाने के लिए इशारा करता हूँ। उसे लिटा देता हूँ। लगता है कि उसके सफ़ेद-सफ़ेद कोये अभी बाहर आ जाएँगे। उसके दोनों हाथ वैसे के वैसे बेजान हुए पड़े हैं। मैं आवाज़ देता हूँ, "भाऊ... भाऊ...।" खाँसी के साथ ही उसका साँस लौटता है। पानी पीकर वह पहले वाली स्थिति में आ जाता है। खाट पर से उतरकर वह पाये से पीठ टिकाकर नीचे बैठ जाता है।

जब वह यहाँ आया था तो उसकी सेहत अच्छी-भली थी। बस दिनों में ही दाढ़ी आधी से ज्यादा सफ़ेद हो गई थी। मुँह पर कालिमा उभर आई थी। आँखें अंदर धँसनी शुरू हो गई थीं।

"बाबू जी, इनकी दवाई नहीं लाए?" अब गोरखा पूछता है।

एक बार फिर फँस जाता हूँ। बताऊँ कि न बताऊँ।

"याद नहीं रहा।" मौके की नज़ाकत को देखते हुए झूठ ही बोलता हूँ।

"सच...।" वह अचंभे से पूछता है। मानो मेरी बात पर उसे विश्वास न हुआ हो।

"आज बात करूँगा बाबू आकाशदीप से।" हाल फिलहाल मैं टाल जाता हूँ।

"तुम पैसे दे दो, खुद ले आऊँगा।"

उसके कहे का जवाब मेरे पास नहीं है। दवाई ले दूँ तो आकाशदीप कहेगा - "ऐसे वह सिर चढ़ जाएगा। इसको पहले ही कितनी सहूलियतें दी हुई हैं। दो वक्त रोटी। चाय-पानी का खर्चा। अब दवाई भी हम लेकर दें। कल कुछ और माँग लेगा। तुम चुप

रहा करो। खुद एक-दो बार माँगकर हट जाएगा। बहुत ही पीछे पड़ जाए तो कह देना - मेरे से बात करे।"

"बाबू जी, रात में फिर जोगिंदर...।" जोगिंदर ट्रैक्टर पर बैठकर निचले खेत की ओर चला गया है। गोरखा आसपास देखते हुए अपनी गुप्त रिपोर्ट देता है।

"क्या?"

"उसने बोला था।"

"क्या बोला था? रात को?"

"रात को जोगिंदर ने साथ वाले सरदार के खेतों में तीन-चार घंटे ट्रैक्टर चलाया था।"

"अच्छा! और?"

"मुझे बोला था, किसी को मत बताना। नहीं तो मारकर ज़मीन में गाड़ दूँगा।"

"और उसने क्या किया?"

"रात को देर तक ट्रैक्टर चलाता रहा। मेरे साथ पानी भी देखता रहा। सुबह कुएँ में भी काम किया। बाबू जी, वैसे वह बहुत काम करता है। और वो भी मन लगाकर।"

जोगिंदर से पहले मैं इस फर्म में आया था। बाबुओं ने उसे कार ड्राइवर रखा था। इससे पहले वह जालंधर में एक दवाइयाँ बनाने वाली फैक्टरी में लगा हुआ था। उसने स्वयं ही बताया था, "बंबई बांद्रा फैक्टरी में कंपनी ड्राइवर था। लिमिटिड फर्म। टाइम से साहब को ले जाना, टाइम से ले आना। वहाँ बड़ी मौजें थीं। फर्म का क्वार्टर था। फर्म की कैंटीन। उन्हीं दिनों बापू का स्वर्गवास हो गया तो मुझे गाँव आना पड़ा। बाकी सभी भाई घर से बाहर ही नौकरियों पर लगे हुए थे। मुझे कहने लगे, तू यहीं डिरैवरी कर ले। पीछे किसी न किसी को रहना पड़ेगा। फिर क्या था, एक बार पैर उखड़ें, फिर आदमी कहीं सँभल पाता है।"

उसके काम से मालिक खुश थे। वह तड़के ही उठ जाता था। मारुति कार को धोता था। अंबेसडर पर कपड़ा मारता था। राजदूत मोटर साइकिल, बजाज स्कूटरों को चमका कर रखता था।

कोई टोकता तो वह जवाब दिया करता था, "मुझसे खाली नहीं रहा जाता। गाड़ियों पर धूल जमीं हो, फिर कहीं वे अच्छी लगती हैं? किसी और से न सही, पर मुझसे नहीं देखा जाता। देखो, साफ-सुथरी कितनी अच्छी लगती हैं। पहले तो कबूतरों की बीठों से भरी पड़ी होती थीं।"

खाली तो उससे बैठा ही नहीं जाता था। जिस दिन कोई कार कहीं न जाती तो वह कोठी के साथ लगने वाली हवेली में घुसा रहता था। भैंसों को नहलाता। चारा डालता था। मशीन के पास सफाई करता था। बाबा जी के पास आ बैठता था। उनकी टांगों की मालिश करता था। माता जी किसी काम के लिए हाँक मारते तो वह झट हाज़िर हो जाता था। फिर चाहे मंदिर जाना होता या रोटरी क्लब की मीटिंग के कार्ड बाँटने होते या किसी अफ़सर के घर मिठाई का डिब्बा पहुँचाना होता या कोई संदेश, आगे से वह 'न' नहीं करता था। न शब्द उसके मुँह से कभी निकला नहीं था।

शाम के वक्त वह मेरे पास आ बैठता था। चाय पीने को उसका मन करता तो झिझकते-झिझकते पूछता था, "बाबू जी, चाय के लिए कह आऊँ?"

"मुझसे क्यों पूछता है?"

"तुम मालिक हो?"

"मालिक तो अंदर बैठे हैं।"

"पर हमारे मालिक तो तुम ही हो। हमारे लिए तो तुम बड़े हो।"

"मैं कैसे बड़ा हुआ? उम्र भी तेरे से कम है, तनख्वाह भी कम।"

"पर रुतबा बड़ा है।"

घड़ी की तरफ देखता हूँ। छह बजने वाले हैं। उफ्फ! इतनी गरमी! गरमी तो कम होने का नाम ही लेती नज़र नहीं आ रही। गोरखे से जोगिंदर को बुलाने के लिए कहता हूँ।

जेगिंदर निचले खेत को जोत रहा है। सिर पर लपेटे साफे के एक सिरे से उसका नाक ढका हुआ है। वह लिफ्ट नीचे गिराता है। रेत का एक गुबार उठता है। पूरब की हवा के संग चारों तरफ बिखर जाता है। वह बाँह से माथे पर आया पसीना पोंछता है। किसी फिल्म का घटिया सा गीत गा रहा है। अपनी ज़िंदगी से मेल खाता हुआ। कार ड्राइवर था, अब उसके हाथ में ट्रैक्टर की लिफ्ट आ गई है। कभी लिफ्ट नीचे गिरा दी और कभी ऊपर उठा ली। सात सौ रुपया महीना तनख्वाह मिलती है। सात सौ वह घर दे

आता है। महीने बाद घर जाता है। बढ़ती जा रही ज़रूरतों की गाँठ सिर पर उठा इधर चल पड़ता है। एक ज़रूरत पूरी होती है तो दूसरी सिर उठा लेती है। यह सिलसिला खत्म होने पर नहीं आ रहा है। कई बार यहाँ से हटने की स्कीमें बनाता है पर अभी तक वह फ़ैसला टालता आ रहा है।

पिछले हफ़्ते दो दिनों का कहकर गया, वह पाँच दिनों के बाद लौटा था। उसका चेहरा उतरा हुआ था। अधरंग हुए कुत्ते की तरह अपना आप घसीटता वह बैंच पर गिर ही पड़ा था। इस बार उसने कपड़े पहले वाले ही पहन रखे थे। यहाँ से भी ज्यादा मैले। पहले जब वह घर जाता था तो वह दाढ़ी रँगता था। फिक्सो लगाता था।

टंकी में से पानी का गिलास पीकर उसने स्वयं को ढीला छोड़ दिया था। आँखें मूँदकर दीवार से पीठ लगा ली थी।

"भाऊ क्या बात हो गई?" मैंने पूछा था। खोखे वाले को दो उँगलियाँ खड़ी करके चाय के लिए इशारा किया था।

"कुछ नहीं जी।"

"कुछ तो है।"

"चित्त ठीक नहीं।"

"घर में कुशल था?"

"छोटा ठीक नहीं।"

"क्या हो गया?"

"पीलिया।" मरी सी आवाज़ में उसने बताया था।

"यह तो खतरनाक बीमारी...।"

"डॉक्टर भी...।"

गेट की तरफ से आकाशदीप को आता देख उसने बात बीच में ही छोड़ दी थी। उठकर उसने नमस्ते की थी। नमस्ते को बीच में ही काटकर आकाशदीप गुस्से में बोला था, "जोगिंदर, तेरी यह आदत मुझे पसंद नहीं।"

"मुझे पता है।"

"कुछ हमारा भी सोच लिया कर।"

"मेरा बेटा ठीक नहीं था जी।"

"अच्छा-अच्छा। चल फिर मलसियों को जा। बहुत काम करने वाले पड़े हैं। बस, अभी चला जा। तुझे शाहकोट वाली बस मिल जाएगी। मैं भी आऊँगा मलसियों वाले भट्ठों की तरफ चक्कर मारकर।"

जोगिंदर पैरों में कैंची की चप्पलें ठूँसने लग पड़ा था।

नए ट्रैक्टर का उद्घाटन उसने ही किया था। कारें कितने ही दिन कहीं गई ही नहीं थीं। बड़े बाऊजी बीमार हो गए थे।

आकाशदीप ने चाबी उसकी तरफ उछाल कर कहा था, "चल भई जोगिंदर, अब से ज़मीन जोत।" आगे उसने क्या जवाब देना था। ट्रैक्टर स्टार्ट किया था। मालिकों की नई खरीदी ज़मीन की ओर चला गया था।

अब कार ड्राइवर से वह ट्रैक्टर ड्राइवर बन गया था। जब मालिकों को ज़रूरत पड़ती थी तो वे उसे कार पर लगा देते थे। नहीं तो ट्रैक्टर होता।

अब तो वह डेरे पर ही रहने लग पड़ा था।

पता नहीं एक दिन उसने कहाँ से शराब पी ली थी। पैसे उसके पास नहीं थे। बीड़ियाँ मैंने लेकर दी थीं। आकाशदीप ने बताया था, "जोगिंदर ने आज तेल निकालकर बेचा होगा। शराब पी थी। ट्रैक्टर कहीं मार कर सामने वाली लाइट तोड़ दी। मालूम है, आगे से क्या कहता था - यह तो लाइट ही टूटी, आदमी भी मर सकता था।"

सारे परिवार ने उसे चीलों की भाँति घेर रखा था।

बड़े बाऊजी कह रहे थे, "इसने जानबूझ कर तोड़ी है।"

आकाशदीप कह रहा था, "ऐसे कैसे टूट सकती है?"

"यह तो धूप में तिड़क कर टूटी।" जोगिंदर बार बार यही सफाई देता रहा था।

मेरे समझाने पर जोगिंदर ने माफ़ी माँग ली थी।

रात में जब मैं अपने घर जा रहा था तो उसने मुझे रोक कर पूछा था, "एक बात बताओ। सच बोलना क्या पाप होता है?"

"नहीं।"

"फिर जब मैं सच बात बता रहा था कि शीशा गरम होकर तिड़क गया तो इन्होंने एतबार नहीं किया। एक दिन मेरे साथ ट्रैक्टर पर बैठकर देखें कि ज़मीन कैसे भड़ास छोड़ती है।"

"पर शराब।"

"महितपुरी वालों ने नया बोर उठाया था, उन्होंने पिलाई थी।"

अब जाने से पहले आकाशदीप मुझे ताकीद करता था, "देखना, जोगिंदर कहीं हेराफेरी न किए जाए।"

मैं कह बैठता था, "अगर उस पर एतबार नहीं रहा तो हटा क्यों नहीं देते?"

"हटाना नहीं इसे। बहुत कारीगर बंदा है। जिस मर्जी काम पर लगा दो। मिस्त्री है। राज मिस्त्री आज कल सौ से कम दिहाड़ी नहीं लेते और काम भी अपनी मर्जी से करते हैं। इसके रोज़ के पच्चीस-तीस बनते हैं। पाँच-दस की रोटी खा जाता होगा। दो-चार और ऊपर के खर्चे के लगा लो। कोई बुरा नहीं। इसने कमरों मे टीप की। अब कुँओं की करेगा। ट्रैक्टर चलाएगा। पानी लगाएगा। इतने पैसों में सौदा बुरा नहीं।"

कपड़े उतार कर मैं घड़े में से पानी का गिलास पीता हूँ। गोरखा आड़ के दोनों तरफ मिट्टी लगा रहा है। थैले में खाली बर्तन डालकर मैं जोगिंदर की तरफ देखता हूँ। उसने पहले ही मेरी तरफ देख लिया है। खेत जोतना रोकर वह ट्रैक्टर इधर मोड़ लेता है। पास आकर पूछता है, "फिर तैयारियाँ जी।"

"हाँ, अब चलें।"

"चलो, मैं छोड़ आता हूँ। कहाँ धूप में जाओगे।" सिर पर से साफा उतार कर वह पैरों पर पड़ी रेता को झाड़ता है। मेरे हाथ से थैला पकड़कर पैरों के पास रखता हुआ पूछता है, "देख लो, कोई चीज़ तो नहीं रह गई।"

उसकी तरफ देखकर मैं हँस पड़ता हूँ।

वह पूछता है, "चलें फिर जी...।"

मुझे कुछ याद आता है। ट्रैक्टर पर से नीचे उतर कर मैं तेल वाला ड्रम देखता हूँ।

रास्ते में वह मेरे संग कोई बात नहीं करता। उसके अंदर कुछ सुलग रहा है। मानो वह कुछ कहना चाहता है। लेकिन मुझे मालिकों का खास आदमी समझकर बता नहीं रहा। बीच बीच में वह मेरी ओर रहस्यपूर्ण मुस्कराहट फेंकता है। मेरे अंदर तल्ख़ी-सी पैदा करता है। मुझसे उसकी चुप्पी सहन नहीं हो रही। मैं जानता हूँ कि वह कुछ न कुछ ज़रूर बोलेगा। वह कालोनियों के मोड़ तक वैसे ही गुमसुम बना रहता है।

"क्या बात हो गई, भाऊ, बड़ा चुप है?" बस-स्टैंड पर पहुँचकर मैं पूछता हूँ।

"कुछ नहीं।"

"मेरे से नाराज़ है?"

"नहीं बाबू जी। पर एक बात बताओ। तुम्हें भी मेरे काम पर शक होता है?"

"बिलकुल नहीं।"

"फिर तुम बाबुओं की तरह गोरखे से क्यों पूछते रहते हो? मैं किसी से कम काम नहीं करता। काम में उन्नीस-इक्कीस हो जाता है। अपने बाबू तो अंग्रेज हैं। काले अंग्रेज। मेरे से तुम्हारे बारे में पूछते रहते हैं। बताऊँ... चलो, छोड़ो। उन्हें तुम नहीं समझ सकते।"

एक पल मुझे चक्कर-सा आ जाता है। इस बात के बारे में तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था। कहना तो मैं यह चाहता था कि मैं तो अपना फ़र्ज़ पूरा कर रहा हूँ। परंतु, मुझसे कुछ नहीं कहा जाता। उससे इतना ही पूछता हूँ, "चाय पिलाऊँ?"

"बस जी, तुम्हारी ही पीते रहे हैं..." कहते हुए उसने फुर्ती से ट्रैक्टर को पीछे की तरफ मोड़ लिया था।